International Journal of Multidisciplinary Research and Growth Evaluation.

भ्रमरगीत: उपालंभ काव्य

डॉ0 आरती कौशल
हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय ढलियारा (हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय), ढलियारा, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश, भारत

* Corresponding Author: **डॉ0 आरती कौशल**

Article Info

ISSN (Online): 2582-7138
Impact Factor (RSIF): 7.98
Volume: 07
Issue: 01
Received: 18-11-2025
Accepted: 20-12-2025
Published: 22-01-2026
Page No: 695-697

सारांश
भक्ति कालीन हिंदी साहित्य में कृष्ण-काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है, जिसमें भ्रमरगीत परंपरा एक विशिष्ट और समृद्ध धारा के रूप में उभरती है। भ्रमरगीत मूलतः उपालंभ काव्य है, जिसका आधार श्रीमद्भागवत पुराण (दशम स्कंध) के मणिगीत तथा गोपी-उद्धव संवाद में निहित विरह-वेदना, प्रेम की तीव्रता और ज्ञान-योग के खंडन में है। यह परंपरा सूरदास के भ्रमरगीत से अपनी चरमोत्कर्ष प्राप्त करती है, जहाँ गोपियों द्वारा कृष्ण, उद्धव, भँवरे, मुरली, चंद्रमा, रात्रि, मोर आदि के प्रति दिए गए उपालंभ विरह-श्रृंगार की गहन अनुभूति को व्यक्त करते हैं। उपालंभ की चार प्रमुख विशेषताएँ—प्रिय की निष्ठुरता का वर्णन, अपने प्रेम की दृढ़ता, प्रिय के वचनों का स्मरण तथा अंग-अंग की सुधि लेना—इस काव्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। सूरदास के बाद नंददास, रसखान, घनानंद तथा आधुनिक काल तक यह परंपरा निरंतर चली आ रही है। भ्रमरगीत के माध्यम से भक्ति-साहित्य में उपालंभ केवल शिकायत नहीं, बल्कि प्रेम की गहनता, निष्ठा और विरह-व्यथा की मार्मिक अभिव्यक्ति बन जाता है।

Keywords: भ्रमरगीत, उपालंभ काव्य, विरह-श्रृंगार, सूरदास, गोपी-उद्धव संवाद, भक्ति काल

परिचय

हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्ति काल अपना एक विशेष स्थान रखता है। भक्ति कालीन काव्यधारा में कृष्णकाव्य का एक महत्वपूर्ण स्थान है। सगुण भक्ति के आराध्य देवताओं में भगवान श्रीकृष्ण सर्वोपरि हैं। श्रीकृष्ण भारतीय पुराण और इतिहास में सबसे ज्यादा वर्णित हुए हैं। कृष्णकाव्य का आधार ग्रंथ श्रीमद्भागवत पुराण और महाभारत को माना जाता है। कृष्ण गोपी चर वर्णन विषयक काव्य युग-युग से साहित्यकारों को आकर्षित करता रहा है। यह काव्य भ्रमरगीत, भ्रमरगीत, उद्धवशतक आदि नाम से भी जाना जाता है। हिंदू काव्य में भ्रमरगीत परंपरा का मूल स्रोत श्रीमद्भागवत पुराण है जिसके दशम स्कंध के ४०वें और ४७वें अध्याय में भ्रमरगीत संग्रह है, जिसमें काव्य में उद्धव-गोपी संवाद के माध्यम से ज्ञान योग का खंडन तथा प्रेम भक्ति का समर्थन किया गया है उसे ही भ्रमरगीत कहते हैं। भ्रमरगीत से तात्पर्य उस उपालंभ काव्य से है जिसमें नायक की निष्ठा एवं लापरवाही के साथ-साथ नायिका की मुख्यता और विरह वेदना का मार्मिक चित्रण है। भारतीय साहित्य के इतिहास में संस्कृत साहित्य से लेकर वर्तमान साहित्य तक उपालंभ का उल्लेख कहीं न कहीं हम देख ही जाते हैं। हमारे लोकगीत में इसकी छटा सर्वत्र दिखती है वास्तव में उपालंभ के द्वारा अपनी बात कहने का ढंग कुछ निराला और अनोखा है। चाहे कबीर वाणी हो या संत रविदास वाणी चाहे रामचरितमानस हो संपूर्ण संत साहित्य उपालंभ से ओतप्रोत दिखाई देता है। इसी परंपरा में यदि सबसे सशक्त उपालंभ काव्य कहीं देखा जा सकता है तो वह सूरदास का भ्रमरगीत है जिसमें उपालंभ का अतीव सुंदर रूप हम देखाई देता है। हिंदी साहित्य में भ्रमरगीत की एक लंबी और काव्यात्मक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध परंपरा रही है, जिसका इतिहास सूरदास से आरंभ होकर आज तक निरंतर चलता आ रहा है। अतः भ्रमरगीत परंपरा का मूल्यांकन करने से पूर्व यह आवश्यक होगा कि हम पहले यह समझ लें कि "भ्रमरगीत" शब्द का अभिप्राय क्या है तथा उसका नाम "भ्रमरगीत" क्यों पड़ा। भ्रमरगीत प्रधानतः उपालंभ काव्य है, जिसके मूल में वियोग श्रृंगार की भावना मुख्य रहती है। कृष्ण जब जन्म गोपियों के साथ रासलीला रचाकर मथुरा चले जाते हैं, तो गोपियाँ उनके विरह में अहर्निश दग्ध होती रहती हैं। मथुरा की राजनीति में व्यस्त कृष्ण को इतना अवकाश नहीं मिल पाता कि वे गोकुल जाकर गोपियों की उस विरह-वेदना को शांत कर सकें। अतः वे उद्धव को अपना दूत बनाकर गोकुल भेजते हैं। ताकि वे वहाँ जाकर कृष्ण के माता-पिता तथा गोपियों की कुशल-क्षेम प्राप्त कर सकें और कृष्ण का संदेश उन तक पहुँचा सकें। कृष्ण के आदेशानुसार उद्धव गोकुल अर्थात् व्रज जाते हैं और वहाँ उनका और गोपियों का जो वार्तालाप होता है

।

वह साहित्य में भ्रमरगीत के नाम से प्रसिद्ध है। इसी कारण सूरनारायण काव्यरत्न ने अपने भ्रमरगीत में यशोदा माँ को देश माता के रूप में चित्रित किया है। इन सभी कवियों ने लगभग उपालंभ की प्रक्रिया को अपनाया है और इससे यह स्पष्ट होता है कि भ्रमरगीत के कवि के समक्ष उपालंभ के मर्म की महत्ता संपूर्ण रूप से उजागर हुई है। यह मुख्यतः वियोग श्रृंगार की रचना है। श्रृंगार प्रधान होने के कारण इसमें भाव और अनुभूतियों की गहराई को मापना कुछ कठिन सा जान पड़ता है। यहां न केवल गोपियाँ कृष्ण के विरह में पीड़ित हैं बल्कि कृष्ण भी मथुरा का शासक बनने के बावजूद गोपियों वालों और यहां तक कि पूरे व्रज देश के कण-कण के विरह में व्यथित दिखाई देते हैं। ऐसे में व्यथित गोपियों के मध्य उद्धव का आगमन और उस पर शुकाचार्य का उपदेश गोपियों के विरह की अग्नि को और बढ़ाता है या यूं कहें कि आग में घी का काम करता है। इस शुकाचार्य उपदेश ने गोपियों की सरलता को कठोरता में बदल दिया और गोपियों की तड़प, उनके हृदय की पीड़ा उद्धव पर प्रत्यक्ष वाणी के माध्यम से प्रकट दिखाई देती है। इस विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन सत्य चरितार्थ होता है कि श्रृंगार उपालंभ का दूसरा नाम नहीं हो सकता। वियोग रस का इतना उपालंभ का सामान्य अर्थ शिकायत करना या शिकवा करना होता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में इसकी गणना "सखी-क्रोध" के अंतर्गत होती रही है। जब भी सखी-क्रोध की विवेचना होती है तो उपालंभ का नाम अनायास ही उभर आता है। हिंदी के नायक-नायिका भेद के कितने आचार्यों ने इसी रूप को स्वीकार किया। सामान्य रूप से नायक को उलाहना देकर इसकी नायिका को मनोनुकूल करना ही उपालंभ कहा जाता है। भक्ति साहित्य में अनेक उपालंभ हम पाते हैं, विशेष रूप से गीति काव्य परंपरा में उपालंभ का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कहीं कृष्ण के प्रति गोपी और राधा के उपालंभ मिलते हैं तो कहीं नंद-यशोदा वाले गोपी यहां तक कि पूरे व्रज देश के प्राकृतिक उपादान कृष्ण के प्रति उपालंभ से भरे पड़े हैं। इन उपालंभ में आमीयता और सरलता, सरसता का बोध हम सहज ही हो जाता है। वैसे भी उपालंभ की चार मुख्य विशेषताएं होती हैं-

क) प्रिय की निष्ठुरता का वर्णन
ख) अपने प्रेम की दृढ़ता का वर्णन
ग) प्रिय के विश्वास और आश्वासन का स्मरण
घ) प्रिय के अंग-अंग की सुधि करना और पश्चाताप की आग में तपना।

मूलतः पुरुष कठोरता की प्रतिमूर्ति है और नारी कोमलता की। उसके आंतरिक और बाह्य दोनों ही कोमल पक्ष का लाभ पुरुष उठाना चाहता है और नारी मोम की तरह कोमल होने के कारण यों छावर होने में विलंब नहीं करती। श्रीकृष्ण भी गोपियों के ऐसे ही प्रिय हैं जो गोपियों से उनका सर्वस्व लेकर उनकी पीड़ा के प्रति अनभिज्ञ बने हुए हैं। और भ्रमरगीत में गोपियों का उपालंभ वर्णन लगभग इसी तथ्य पर आधारित है। हां यह जरूर है कि इस उपालंभ को और भी बल मिलता है जब उद्धव गोपियों के मध्य कृष्ण के प्रेम संदेश के स्थान पर कृष्ण की तरफ से गोपियों को शुक योग की बात बताने, उन्हें अपनाने के लिए जोर डालते दिखाई देते हैं। कृष्ण की निष्ठुरता जिसका प्रतिनिधित्व स्वयं उद्धव कर रहे थे, गोपियों के एक कोने में और उससे उपजे क्रोध ने कृष्ण और उद्धव दोनों की निष्ठुरता की धज्जियां उड़ा दी और इसका माध्यम साफ रूप से उपालंभ ही था। गोपियों ने तो कृष्ण और भंवरे में समानता पाते हुए साफ कहा कि दोनों बाह्य रूप से भी श्याम वर्ण हैं और उनका अंतर मन भी कलंक अर्थात् कलुष युक्त निंद्य वृत्ति से भरा पड़ा है जो केवल जैसे भंवरा फूल के पास अपना इच्छित पदार्थ पराग ग्रहण करने के लिए ही आता है वैसे इसका फूल से कोई प्रेम नहीं होता ठीक उसी प्रकार कृष्ण ने भी गोपियों का फायदा उठाया वास्तविकता में वह गोपियों के साथ हृदय से जुड़ा ही नहीं था इस प्रकार का गोपियों का कृष्ण के प्रति उलाहना उनके हृदय में कृष्ण के प्रति एक कोने में और उसके प्रति उपजे क्रोध के रूप में प्रकट होता है। वे कृष्ण को उलाहना देती हुई कहती हैं कि आरंभ से ही कृष्ण ने हम गोपियों अतिरिक्त दया ही क्या है। सूरदास के उपालंभ का कोमल दुख देने के यथार्थ का अनुसरण करते हुए आगे के कुछ कवियों ने इस परंपरा का अनुसरण किया है। नंददास के भ्रमरगीत में भी यह भावना देखने को मिलती है। इसका आधार भी कहीं न कहीं भागवत दर्शन ही रहा है फिर चाहे आधुनिक काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र की चंद्रावली नाटिका हो जो सूर की परंपरा को ही आधार बनाकर लिखी गई है। इस नाटिका के माध्यम से भी उपमा शैली को ही अपनाया गया है। कवि रसखान का उद्धव शतक भी हम इसी परंपरा पर आधारित देखता है इसमें भी उपालंभ प्रक्रिया अपनाई गई है। कवि हुए हैं बहुत से ऐसे भक्त जिन्होंने परमात्मा की आराधना दास्य भाव से की है लेकिन इन कवियों ने जब अपने आराध्य के प्रति दृढ़ विश्वास और निष्ठा को व्यक्त किया और अपने आराध्य की निष्ठुरता का वर्णन जहां पर वे करते दिखते हैं वह भी कहीं न कहीं उपालंभ की श्रेणी में ही परिगणित किया जा सकता है। संत रविदास बानी अनेक स्थलों पर उपालंभ के रूप को प्रस्तुत करती है जहां पापी भक्त भगवान को चुनौती देता हुआ कहता है कि वासुदेव का उद्धार तो तुमने कर दिया लेकिन तुम्हारी तुम्हारी शक्ति वास्तविकता में तभी स्वीकार करूंगा जब तुम मुझ जैसे पापी का उद्धार करोगे। यह भी उपालंभ का एक अनोखा तरीका है। उपालंभ काव्य की चार मुख्य विशेषताएं स्थापित होती हैं-

क) प्रिय की निष्ठुरता का वर्णन
ख) अपने प्रेम की दृढ़ता का वर्णन
ग) प्रिय के विश्वास और आश्वासन का स्मरण
घ) प्रिय के अंग-अंग की सुधि करना और पश्चाताप की आग में तपना।

मूलतः पुरुष कठोरता की प्रतिमूर्ति है और नारी कोमलता की। उसके आंतरिक और बाह्य दोनों ही कोमल पक्ष का लाभ पुरुष उठाना चाहता है और नारी मोम की तरह कोमल होने के कारण यों छावर होने में विलंब नहीं करती। श्रीकृष्ण भी गोपियों में ऐसे ही प्रिय हैं जो गोपियों का सर्वस्व होकर भी उनकी और आसरे विखंडित हैं। गोपियों का सारा ही उपालंभ वर्णन भ्रमरगीत में इसी तथ्य पर आधारित है, हां उस उपालंभ को और बल तब मिल जाता है जब उद्धव प्रेम के स्थान पर योग की खी बात करने लगते हैं। कृष्ण की निष्ठुरता की गोपियों ने धज्जियां बिखेर दीं, माध्यम अभिव्यक्ति का है उपालंभ। यहां तक कह दिया कि श्रीकृष्ण तो भंवरे के समान हैं, जो रस लेना चाहते हैं और देने के नाम पर मौन होकर प्रेयसी के दिल दुखाने के अलावा उन्हें आता ही क्या है? भ्रमरगीत में गोपियों का उपालंभ देखिए-

"प्रीति करि दई हौं गरे छुड़ाई
जैसे बधिक चुगाय कपट कन, पाछे करत बुर।।
मुरली मधुर चुप कर कांप, मोर च ठठवार।"

गोपियों को तो कृष्ण का अब बिलकुल विश्वास नहीं है। इसी अविश्वास के कारण वे उद्धव को भी लपेटे में ले लेती हैं और बेवकूफ, न जाने क्या-क्या कह देती हैं-

"मधुबनियां लोगिन को पतिपाय
मुख औरे अतगत औरे पतियां लिख पठवत हैं वनाय।।
जैसे मधुकर पहुप बास लै फेरन बूडौ बातहु आय।
सूर जहां लौ श्याम गात है, तितन स य कजए लगाय।।"

भड़क कर गोपियां क्या-क्या उलाहने नहीं देतीं इसी क्रम में वे यहां तक कह देती हैं कि जितने भी काले होते हैं, वे सब के सब एक ही कार के होते हैं उनकी आदत एक जैसी होती है, निष्ठुर और बेवफा तो होते ही हैं, अपितु कहते भी कुछ और हैं और करते भी कुछ और हैं-

"मधुकर ! यह कोर की जाति!
यह जल मीन, कमल पै आलि क य नहीं इनक प्रीति।।
कोकिल कुटिल कपट वायस छलि, फर नहीं बह जाती।
तैसे ह का ह के लिरस अंचयो बैठ एक ह पांति।।"

भ्रमरगीत में जो उपालंभ हैं वे कृष्ण और उद्धव के अतिरिक्त चंदा, राधा, मयूर, मुरली को भी दिए गए हैं-

चांद का उपालंभ –
"कोउ भाई। वरजै या चंदह!
करत है कोप बहुत हम ऊपर, कुमुद दिन अनदहं।।"

अथवा-

"या बन होत कहा अब सुनो।
लै कन कट कयो, प्राची दिस वरहिन को दुख दनो।।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ठीक ही कहा है कि संयोग के दिनों में आनंद की तरंगें उठाने वाले प्राकृतिक पदार्थ को वियोग के दिनों में देखकर जो दुख होता है, उसकी व्यंजना के लिए कवियों में उपालंभ की चाल बहुत दिनों से चली आ रही है। रात्रि भी वियोग में रात्रि सपनी सी लगती है। बरसात की अंधियारी रात्रि में जब बादल छंट जाते हैं तो चांदनी बिखर जाती है, वह सुखद होते हुए भी प्रिय के अभाव में सांपन सी लगती है। पपीहा, कोयल और मुरली से ईर्ष्या करती हुई गोपियां उपालंभ देने लगती हैं-

"मुरली तऊ गोपालहं नावित।
सुनर सखी। जदप नंद नंदह नाना भांति नचावित।।
राखित एक पांय ठाड़े कर अति अधिकार जनावित।
आपुन पौड़ अधर तैया पर, कर पलव स मद पलुटाव।।"

इसी तरह नींद एवं मोर को भी उपालंभ भ्रमरगीत में दिया गया है जो अनायास ही वियोग की व्यथा को तीव्र कर देते हैं। अतः सूरदास का भ्रमरगीत श्रेष्ठ उपालंभ काव्य है। घनानंद का वियोग भी इसी परंपरा की एक कड़ी है। डॉ. श्याम सुंदर लाल ने तो स्पष्ट स्वीकार किया है कि जहां वियोग श्रृंगार है: वहां उपालंभ अवश्य होगा। दोनों अविभाज्य हैं।

संदर्भ सूची

1. साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ पृ. 171
2. साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ पृ. 16
3. सूर सागर - सूरदास पृ. 13
4. भ्रमरगीत - नंददास पृ. 6
5. चंद्रावली - भारतेंदु हरिश्चंद्र पृ. 57
6. उद्धव शतक – रसखान पृ.112
7. संत रविदास वाणी - डॉ. वेणी प्रसाद शर्मा पृ.71
8. भ्रमरगीत - सूरदास पृ.184
9. भ्रमरगीत - सूरदास पद-75 राग सारंग
10. भ्रमरगीत - सूरदास पद-8
11. भ्रमरगीत - सूरदास पद-36
12. भ्रमरगीत – सूरदास पद-54
13. भ्रमरगीत - सूरदास पद-63
14. भ्रमरगीत - सूरदास पद-82